शिक्षा कैसी हो?

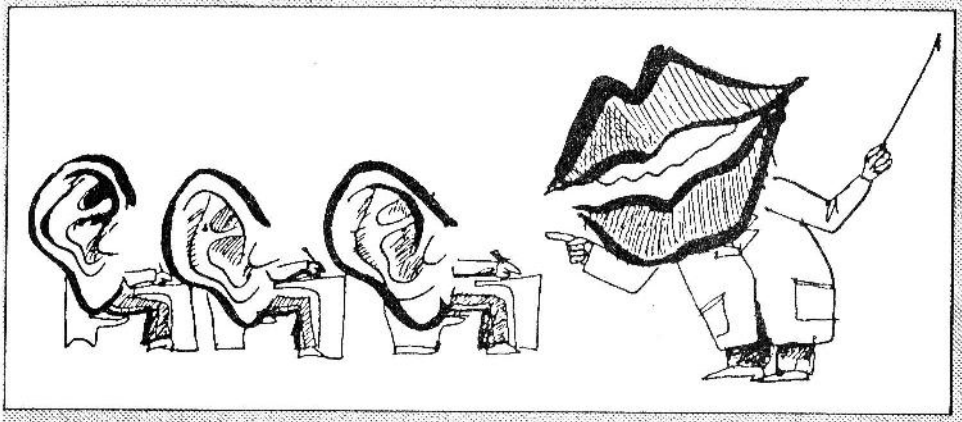

क्या शिक्षक और विद्यार्थियों की भूमिका ऐसी ही रहेगी?

या

बदलकर कुछ ऐसी भी बनेगी?

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के बीस साल
कुछ अनुभव, कुछ चुनौतियां

आज की शिक्षा से सभी परेशान हैं

शिक्षा का अर्थ एक ज़माने में यह बना कि विद्यार्थियों को ऐसी ज़रूरी जानकारी व हुनर सिखा दिए जाएं जिनसे लैस होकर वे कुछेक दिए गए कामों को अंजाम दे सकें। इसे कुछ लोग "बाबू" बनाने की शिक्षा कहते हैं, तो कुछ लोग मैकॉले की शिक्षा। पर कुल मिलाकर इस शिक्षा का मकसद यह नहीं था कि विद्यार्थी स्वयं कुछ सोच पाएं, अपनी राय ज़ाहिर कर पाएं। इस प्रकार की शिक्षा को देने के लिए एक तरह का ढांचा भी बना। इस ढांचे में पाठ्य पुस्तकों का महत्वपूर्ण स्थान है। यह पाठ्य पुस्तक "विशेषज्ञों" द्वारा रची जाती है और शिक्षकों के माध्यम से बच्चों तक पहुंचाई जाती है। विशेषज्ञों द्वारा रची जाने की वजह से ये पाठ्य पुस्तकें ज्ञान का अंतिम सत्य मानकर स्वीकार की जाती हैं। इस ज्ञान की रचना में विद्यार्थियों या किसी अन्य सामान्य व्यक्ति की भागीदारी का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। विशेषज्ञ ही यह भी तय करते हैं कि किस कक्षा में कौन सी जानकारी दी जाएगी। यह तय करने में शिक्षकों के अनुभवों का कोई महत्व नहीं रह जाता। विद्यार्थियों से अपेक्षा होती है कि वे इस जानकारी को रट लें। परीक्षा के समय पूछे जाने पर इस जानकारी

को उगल देने पर अंक प्रदान किये जाते हैं और विद्यार्थी को सफल घोषित किया जाता है। कुल मिलाकर इस प्रक्रिया को शिक्षा का नाम दिया गया।

समय-समय पर शिक्षा में आमूल परिवर्तन की दुहाइयों के बावजूद उपरोक्त ढांचा अभी भी कमोबेश वैसा ही चला आ रहा है। कई लोगों ने समय-समय पर इसमें वास्तविक बदलाव लाने की कोशिश की है। इनमें गांधी, गिजु भाई, वग़ैरह द्वारा महत्वपूर्ण काम किया गया।

विज्ञान शिक्षा की हालत भी बाकी विषयों से बहुत अलग नहीं रही है। यहां भी विज्ञान की परिभाषाओं, नियमों, समीकरणों व नामावली को याद कर लेने को ही विज्ञान का नाम दे दिया गया। विज्ञान की इन परिभाषाओं, नियमों, तथ्यों आदि की रचना प्रक्रिया को विज्ञान शिक्षा में कोई स्थान नहीं दिया गया। हालांकि अधिकांश शिक्षाविद् यह स्वीकार करते हैं कि विज्ञान शिक्षा में जानकारी व वैज्ञानिक प्रक्रिया दोनों का ही समावेश होना ज़रूरी है किंतु इसको अमली जामा पहनाने की दिशा में गिने-चुने प्रयास ही हुए हैं। शिक्षा की प्रक्रिया में विद्यार्थियों की सक्रिय भूमिका को भी अब हर जगह स्वीकार किया जा रहा है। यह माना जाने लगा है कि स्कूल में पहुंचने वाले विद्यार्थी निष्क्रिय ग्राहक (खाली घड़े) नहीं होते, बल्कि वे सक्रिय सर्जक होते हैं। जानकारी को याद करना तो शिक्षा का मात्र एक पहलू है। शिक्षा के कई अन्य पहलू भी हैं जिन पर ध्यान दिया जाना अनिवार्य है। मसलन, अपने आसपास की दुनिया को समझने की ललक व क्षमता, चिंतन, दिमागी खुलापन, अपनी बात को कहने की क्षमता, हाथों का हुनर, आदि।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में शिक्षा के इन विविध आयामों को जोड़कर एक समग्र पाठ्यक्रम विकसित करने की कोशिश की गई है। और यह कोशिश कभी भी अंतिम रूप नहीं ले सकती। यह सतत् कोशिश है क्योंकि कक्षा व स्कूल

के अनुभवों के आधार पर लगातार इसे बदलते रहने की ज़रूरत है।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम, जिसे संक्षेप में होविशिका कहते हैं, की सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसमें विद्यार्थियों को शिक्षा की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनाया गया है। इस रूप में यह कार्यक्रम बाल केंद्रित शिक्षा का एक प्रमुख प्रयास है। बाल केंद्रित शिक्षा के संदर्भ में एक और सवाल उठता है। किस उम्र के बच्चे को क्या पढ़ाया जाए, यह तय करने का आधार क्या हो? क्या यह इस आधार पर तय होगा कि उस विषय में जानकारी कितनी तेज़ी से बढ़ रही है या बच्चे के मानसिक स्तर का ध्यान भी रखा जाएगा? इस प्रश्न का एक स्पष्ट जवाब शायद संभव नहीं है परंतु यह तो स्पष्ट ही है कि कहीं न कहीं विषय की ज़रूरतों और बच्चे के स्तर के बीच एक संतुलन बनाना होगा।

बच्चे भाषण से ही नहीं प्रयोग करके सीखें

होविशिका की कक्षा में शिक्षकों से यह उम्मीद नहीं की जाती कि वे बच्चों को एक भाषण देकर पाठ्य पुस्तक में लिखित जानकारी बता दें। इसमें "बाल वैज्ञानिक" नामक कार्य पुस्तक का उपयोग किया जाता है। बच्चे टोलियों में बैठकर प्रयोग करते हैं, उन प्रयोगों के आधार पर चर्चा करके, तर्क करके, अन्य अनुभवों से जोड़कर वैज्ञानिक सिद्धांतों को समझने का प्रयास करते हैं। शिक्षक से उम्मीद होती है कि वे हर कदम पर बच्चों की मदद करें।

कक्षा में इस ढंग की नई भूमिका निभाना आसान नहीं है। इसके लिए अपने आपको बदलने की ज़रूरत पड़ती है। इस बदलाव में सहायता देने हेतु शिक्षकों को

एक प्रशिक्षण व उन्मुखीकरण से गुजरना होता है। इसके लिए प्रत्येक शिक्षक को तीन साल तक तीन-तीन सप्ताह के तीन शिविरों में भाग लेना होता है। इन शिविरों में न सिर्फ विज्ञान की विषयवस्तु तथा विधि का प्रशिक्षण होता है, बल्कि उन्हें एक नई भूमिका निभाने के लिए भी तैयार किया जाता है। हर शिक्षक से "बाल वैज्ञानिक" के प्रयोग करवाये जाते हैं और उनको प्रशिक्षण देने के लिये देश भर के जाने माने वैज्ञानिक भी आते हैं। इसके अलावा शिक्षकों के अनुभवों एवं विचारों के आदान-प्रदान के लिये "होशंगाबाद विज्ञान" बुलेटिन प्रकाशित किया जाता है। यह प्रशिक्षण प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का भी एक साधन है।

प्रयोग करवाने के लिए 'किट'

ऐसा तो माना गया है कि बिना प्रयोग करवाए विज्ञान सिखाया नहीं जाना चाहिए। परंतु फिर भी सामान्य पद्धति में प्रयोग करने का मौका विद्यार्थी को अक्सर पहली बार ग्यारहवीं कक्षा में ही मिल पाता है। और वहां भी प्रयोगों को विषय की मूल पढ़ाई से जोड़ा नहीं जाता और अधिकतर एक औपचारिकता के रूप में निपटाए जाते हैं। होविशिका की यह विशेषता है कि छठी कक्षा से ही बच्चे प्रयोग करते हैं, और विज्ञान का विषय एक समग्र रूप से सीखते हैं। इसके लिये यह तो ज़रूरी हो जाता है कि इस कार्यक्रम में प्रयोग का सामान भी उपलब्ध हो। हर स्कूल के लिये सरकार द्वारा प्रयोग 'किट' का प्रावधान है।

ज़ाहिर है कि इस किट में बहुत महंगे-महंगे उपकरण नहीं धरे हैं जो केवल दूर से ही बच्चों को दिखाये जा सकें पर ऐसी सामग्री है जिनको बच्चे खुलकर इस्तेमाल करें और अपना कौशल विकसित करें। साथ ही यह भी माना जाता है कि प्रयोग के दौरान कुछ चीज़ों की टूटफूट तो होगी ही इस लिये हर साल उसकी आपूर्त्ति का ध्यान भी रखा गया है। कुछ छोटी मोटी चीज़ों का जुगाड़ बच्चे स्वयं ही घर से भी करते हैं। इस कार्यक्रम में ज़ोर दिया गया है कि प्रयोग सामग्री 'सस्ती' व आसानी से उपलब्ध हो। 'सस्ती' का यहां अभिप्राय है कि वह छोटे बच्चों के योग्य हो, और शिक्षकों को भी परिचित सी लगे, ऐसी न हो जिसे छूने में भी उन्हें संकोच हो कि "भई कहीं टूट या बिगड़ गई तो लेने के देने पड़ जाएगें!" इस सोच से प्रेरित होकर होविशिका के कई शिक्षकों ने खुद सस्ते उपकरण इजाद किये हैं और कई नये विकल्प ढूंढे हैं। इसी से नवाचार की भावना व उनकी भागीदारी भी बढ़ी है। देश भर में इस कार्यक्रम की इस बात को सराहा गया है। नवाचार करने वाले शिक्षकों

को जगह-जगह पर सम्मान सहित बुलाया गया है और उनके काम से औरों को प्रेरणा मिली है।

दिक्कत तब आती है जब प्रयोग की किट किन्हीं प्रशासनिक कारणों से स्कूल को उपलब्ध नहीं हो पाती। हेड मास्टर, शिक्षक और बच्चे सभी परेशान हुए हैं। यह दिक्कत न हो, इसके प्रयास भी किए जाते रहे हैं। इनमें से एक महत्वपूर्ण निर्णय यह उभरा कि जो सामग्री स्थानीय स्तर पर उपलब्ध हो, उसे स्कूल द्वारा ही खरीद लिया जाए। परंतु कुछ थोड़ी सी सामग्री फिर भी ऐसी बच रहती है जो हर जगह उपलब्ध नहीं होती। इस तरह की सामग्री को भी सुचारू रूप से सप्लाई करने की व्यवस्था बनाना एक अनिवार्य कदम होगा।

शिक्षकों के नज़रिए से

बहरहाल, इस तरह की भागीदारीपूर्ण शिक्षा पद्धति न सिर्फ सीखने-सिखाने की दृष्टि से बेहतर है, बल्कि विद्यार्थियों की दृष्टि से रोचक व मज़ेदार भी है। जहां-जहां प्रयोग करवाये जाते हैं बच्चे वाकई बड़े चाव से विज्ञान की कक्षा में काम करते हैं और विषय का पूरा मज़ा उठाते हैं। शिक्षकों के नज़रिए से देखें, तो एक सवाल यह उठता है कि इस तरह की पद्धति को लागू किए जाने से उनका काम बढ़ता है या घटता है। इस संबंध में शिक्षकों के मत भिन्न-भिन्न हैं। कुछ शिक्षकों का विचार

शिक्षक बच्चों को हैंड लेंस से फसलों की दुनिया का परिचय करवाते हुए

'परिभ्रमण' पर जाकर पौधे इकट्ठे करती छात्राएं

है कि किट सामग्री लाने-ले जाने, बच्चों को प्रयोग करवाने, उनको अनुशासित रखने तथा प्रश्नों के उत्तर व निष्कर्ष लिखवाने में शिक्षकों को आम पाठ्यक्रम से ज़्यादा मेहनत करनी होती है। इसके विपरीत कुछ शिक्षकों की राय है कि इस तरह की शिक्षा में उनकी मेहनत दरअसल कम हो गई है। उन्होंने किट के रख-रखाव तथा लाने-ले जाने की ज़िम्मेदारी को बच्चों की टोलियों को सौंप दिया है। कक्षा छः से ही वे बच्चों को इस काम में धीरे-धीरे जोड़ना शुरू कर देते हैं। हां, प्रयोगों के बीच एक तार्किक चर्चा करवाना तथा उचित निष्कर्ष तक पहुंचने में बच्चों का मार्गदर्शन करना शिक्षकों का एक प्रमुख कार्य बन जाता है जिसके लिए शायद मेहनत नहीं, हुनर व आत्म-विश्वास हासिल करने की बहुत ज़रूरत होती है।

इस पद्धति से पढ़ाने में एक समस्या का ज़िक्र कई बार किया गया है। प्रायः यह देखा गया है कि खासकर देहाती इलाकों में बच्चे कई कारणों से समय-समय पर अनुपस्थित रहते हैं। अनुपस्थिति के ये कारण बहुधा उनके जीवन से जुड़े होते हैं। ऐसी स्थिति में ये बच्चे उस दिन की पढ़ाई से वंचित रह जाते हैं। शिक्षकों ने ऐसी राय ज़ाहिर की है कि अन्य पाठ्यक्रमों में तो अनुपस्थिति का कोई खास असर नहीं पड़ता क्योंकि बच्चे किताब पढ़कर भी "समझ" लेते हैं। जबकि होशंगाबाद

विज्ञान पद्धति में उन्हें कुछ करके, कक्षा की चर्चा में भाग लेकर कुछ सीखना ज़रूरी होता है। इसलिए एक दिन की अनुपस्थिति से कड़ी टूट जाती है। इस से एक बात स्पष्ट तौर पर यह उभरती है कि शिक्षक भी जानते हैं कि अन्य पाठ्यक्रमों में उनकी व स्कूल की भूमिका नगण्य ही है। वहां मुख्य भूमिका तो पाठ्यपुस्तक की है। परंतु फिर भी यह सवाल तो है ही कि होशंगाबाद विज्ञान जैसी पद्धति में अनुपस्थिति की समस्या का समाधान कैसे किया जाए। इस संबंध में विभिन्न शिक्षकों द्वारा अपनाई गई रणनीतियों पर गौर करने की ज़रूरत होगी।

विज्ञान उतरा बच्चों के जीवन में

जहां-जहां होविशिका में शिक्षकों ने बच्चों को स्वतंत्रता से सोचने, सवालों के हल खोजने और स्वयं प्रयोग करने के लिये प्रेरित किया है वहां-वहां बच्चों ने कमाल की "वैज्ञानिक मानसिकता" दर्शाई है। उदाहरण के लिये, हाल ही में, जब पत्तियों पर नाग-नागिन उभरने वाली अंधविश्वास की लहर देश भर में ज़ोर पकड़े हुए थी, तो होविशिका के कई विद्यार्थियों ने स्वयं ही रहस्य का कारण खोज निकाला था। विज्ञान में डिग्रियां लिये हुए लोग भी जो बात समझ नहीं पाये थे उसका हल बड़े आत्म-विश्वास और सहजता से स्कूल की कुछ छात्राओं ने ढूंढ लिया था। घर पर कई पत्तियों को एक साधारण पिन (सुई) से कुरेद-कुरेदकर आखिर उन्होंने समझ लिया था कि उनपर सफेद संर्पाकार लाईनों का कारण था वह छोटा सा कीड़ा जो पत्तियों की परतों में छिपकर उनका हरा पदार्थ खा रहा था। कई जगहों पर यह खोज की गई थी और विद्यार्थियों ने कीड़े को स्कूल लाकर उसे सूक्ष्मदर्शी से बारीकी से देखा भी था। यह घटना वाकई विज्ञान शिक्षण से उपजी वैज्ञानिक मानसिकता की एक अद्‌भुत मिसाल थी।

मां-बाप कैसे मदद करें

इसी कार्यक्रम से जुड़ा एक प्रश्न यह भी है कि एक प्रयोग आधारित विधि में पालक अपने बच्चों की क्या व कैसे मदद करें। इस संबंध में एक ही बात कही जा सकती है। किसी भी प्रयोग आधारित पाठ्यक्रम का यह मतलब नहीं होता कि हर बार जब किसी वैज्ञानिक सिद्धांत की बात हो, हर बार जब किसी प्रश्न का हल खोजना हो, तो हम प्रयोग करने बैठ जाएं। मतलब सिर्फ इतना ही है कि प्रयोग या गतिविधि के ज़रिये हम सिद्धांतों को समझें। इसके बाद विभिन्न प्रश्नों का हल खोजने में इन सिद्धांतों का उपयोग करना होता है। इसी का अभ्यास करवाकर बच्चों की मदद की जा सकती है। यदि बच्चों ने सिद्धांत को ठीक से समझ लिया है और उसे विभिन्न परिस्थितियों में लागू करने का अभ्यास भी किया है, तो कोई कारण नहीं कि वे एक और नई परिस्थिति आने पर उसे लागू करके निष्कर्ष न निकाल पाएं।

अब परीक्षा है समझ की

इसी बात को आगे बढ़ाकर परीक्षा पर भी लागू किया जा सकता है। हो।वि।शि।का। की परीक्षा के दो हिस्से होते हैं - एक लिखित (या सैद्धांतिक) एवं दूसरा प्रायोगिक। प्रायोगिक परीक्षा में बच्चे द्वारा विकसित प्रायोगिक हुनर की जांच की जाती है। लिखित परीक्षा में इस बात की जांच होती है कि बच्चे सीखे हुए सिद्धांतों को कितनी अच्छी तरह समझ पाए हैं। इसी के साथ-साथ यह भी देखने की कोशिश होती है कि उनमें तर्क शक्ति का कितनी हद तक विकास हुआ है। इस तरह की परीक्षा में यह ज़रूरी नहीं माना जाता कि बच्चों को सभी वैज्ञानिक जानकारी रटी हुई हो और वे उन्हें वापिस उगल दें। परीक्षा में समझ की जांच होती है। इसीलिए बच्चों को यह अनुमति होती है कि वे अपनी किताबें परीक्षा में अपने पास रखें व ज़रूरत पड़ने पर उनका इस्तेमाल भी करें। किताब का इस्तेमाल मात्र संदर्भ पुस्तक के रूप में किया जाता है क्योंकि परीक्षा के प्रश्नों के उत्तर सीधे-सीधे किताबों में नहीं मिलते। बच्चों को इस बात का अभ्यास ज़रूर कराया जाना चाहिए कि प्रश्नों के हल खोजने में किताब से क्या व कैसे मदद लें।

शिक्षकों की भागीदारी

यह सही है कि सामान्य से अलग ढंग की पद्धति होने की वजह से थोड़ा अटपटापन लगता है तथा क्रियान्वयन में कई दिक्कतें भी आती हैं। परंतु शिक्षा के किसी भी मॉडल को लागू करने में दिक्कतें आती ही हैं। इन दिक्कतों से निपटने के दो ही तरीके हैं। पहला तरीका शुतुरमुर्ग वाला है। हम दिक्कतों की तरफ से आंख मूंद लें, तो दिक्कतें अपने आप नज़र आना बंद हो जाएंगी। दूसरा तरीका है इन दिक्कतों को खोजने का तथा इनके संदर्भ में मूल मॉडल को लगातार संशोधित व परिमार्जित करने का। होविशिका की रचना में ही इस ढंग की व्यवस्था की गई है कि क्रियान्वयन संबंधी दिक्कतें उभरकर सामने आएं। इसे कार्यक्रम की "फीड बैक" प्रणाली कहा जाता है। हर जीवंत तंत्र में एक फीड बैक प्रणाली होती है। इसी "फीड बैक" प्रणाली की वजह से होविशिका एक निरंतर विकसित होता कार्यक्रम बन सका है। इस "फीड बैक" प्रणाली के अंतर्गत सवालीराम को लिखे गए बच्चों के पत्र, स्कूलों में नियमित "फौलों अप", ब्लॉक स्तर पर शिक्षकों की मासिक गोष्ठियां आदि शामिल हैं। सबसे दिलचस्प बात यह है कि फीड बैक प्रणाली की बदौलत ही शिक्षकों को इस कार्यक्रम के विकास में सक्रिय भागीदार बनाना संभव हुआ है। पाठ्यक्रम, कार्य-पुस्तक, परीक्षा, किट सामग्री, आदि हर पहलू के विकास में शिक्षकों ने महत्वपूर्ण व निर्णायक भूमिका निभाई है।

आगे की पढ़ाई से संबंध

कोई भी नया पाठ्यक्रम लागू होने पर यह चिंता स्वाभाविक है कि उसका शिक्षा की अन्य प्रक्रियाओं व शिक्षा के अन्य स्तरों से क्या व कैसा जुड़ाव होगा। खासकर जब होविशिका जैसे कार्यक्रम के तहत् विधि व पाठ्यक्रम में आमूल परिवर्तन किए जाएं तो यह चिंता एक नया रूप धारण कर लेती है। वर्तमान संदर्भ में यह चिंता दो रूपों में व्यक्त हुई है। चिंता होने का ही यह अर्थ है कि लोग होविशिका के नएपन को महसूस कर रहे हैं। पहली चिंता यह है कि आगे के पाठ्यक्रम से होविशिका की कड़ी कैसे बैठेगी? वास्तविक सवाल यह है कि पहली कक्षा से लेकर दसवीं तक का एक समग्र पाठ्यक्रम कैसे व किन आधारों पर तैयार किया जाए। हमारे मुताबिक ऐसा पाठ्यक्रम तैयार करते हुए कई बातों का ध्यान रखना होगा। बच्चों का मानसिक स्तर, विषय की ज़रूरत, आगे पढ़ने वाले बच्चों की ज़रूरतें, स्कूल छोड़ देने वाले बच्चों की ज़रूरतें, वग़ैरह कुछ कारक हैं जिन पर गौर करना ज़रूरी है। दसवीं के

बाद विद्यार्थी अपनी मर्ज़ी के विषयों का चयन करते हैं। इसलिए उसके आगे पाठ्यक्रम निर्धारण के आधार भी बदल जाएंगे। परंतु ज़्यादा ठोस रूप में देखें, तो हाई स्कूल अध्यापकों की चिंता यह है कि होविशिका के पाठ्यक्रम में कुछ ऐसे विषय छोड़ दिए गए हैं जिनकी वजह से बच्चों को नवीं के पाठ्यक्रम से कड़ी बैठाने में दिक्कत होती है। इनमें मुख्यत: अणु-परमाणु की संरचना, रासायनिक संकेत, सूत्र व समीकरण का उल्लेख होता है। हम ऐसा मानते व महसूस करते हैं कि रासायनिक क्रियाओं के शुरूआती अध्ययन में संकेत, सूत्र व समीकरण से कोई खास मदद नहीं मिलती बल्कि शुरूआती स्तर पर तो पदार्थों के गुर्णधर्म, उनके परिवर्तन, उनकी क्रियाओं आदि का ठोस रूप में अध्ययन करना रसायन के अध्ययन की ठोस बुनियाद प्रदान करना है। संकेत, सूत्र व समीकरण तो रसायन शास्त्र की अमूर्त भाषा के अंग हैं जिन्हें अब अन्य देशों में भी बाद की कक्षाओं के पाठ्यक्रम में रखा जाना उचित समझा जाता है। वैसे भी नवीं कक्षा की पुस्तकों में इन विषयों की शुरूआत नए सिरे से की जा रही है। हां इस बात पर ज़रूर विचार विमर्श होना चाहिए कि आगे इन अवधारणों को सीखने के लिए बच्चों की इस वक्त क्या तैयारी करवाई जाए।

आगे चलकर अच्छे इंजीनियर डॉक्टर आदि बनने के लिए भी बच्चों में अधिक समझ, समस्या का स्वयं हल करने की क्षमता तथा नई परिस्थितियों में आत्मविश्वास की ज़रूरत होगी। कॉम्पटीशन परीक्षाओं (आईआईटी, पीएमटी, पीईटी) में भी आजकल इन गुणों की जांच पर ज़ोर है और ऐसे ही प्रश्न पूछे जाते हैं। इस तरह से विज्ञान सीखे हुए बच्चों को वहां भी फायदा होगा।

बच्चों की पढ़ाई और स्कूल के पाठ्यक्रम के प्रति चिंतित व सजग होना तो पालकों का कर्तव्य है। स्कूल में पढ़ाई हो रही है या नहीं, कैसी हो रही है, जो पढ़ाया जाता है उसे बच्चे समझ भी पाते हैं, पाठ्य सामग्री बच्चों की उम्र के लायक है या नहीं, बच्चे उसमें रूचि ले पाते हैं या नहीं या केवल रटने रटाने से त्रस्त हैं, फेल होने से हताश हैं और बस्ते के भार से झुके जा रहे हैं- इन महत्वपूर्ण बातों की ओर पालकों का ध्यान तो होना ही चाहिए, साथ ही उनकी आवाज़ भी बुलंद होनी चाहिए जिससे कि शिक्षा को अधिक सार्थक बनाने में उनकी भी सक्रिय भागीदारी हो सके।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण समूह

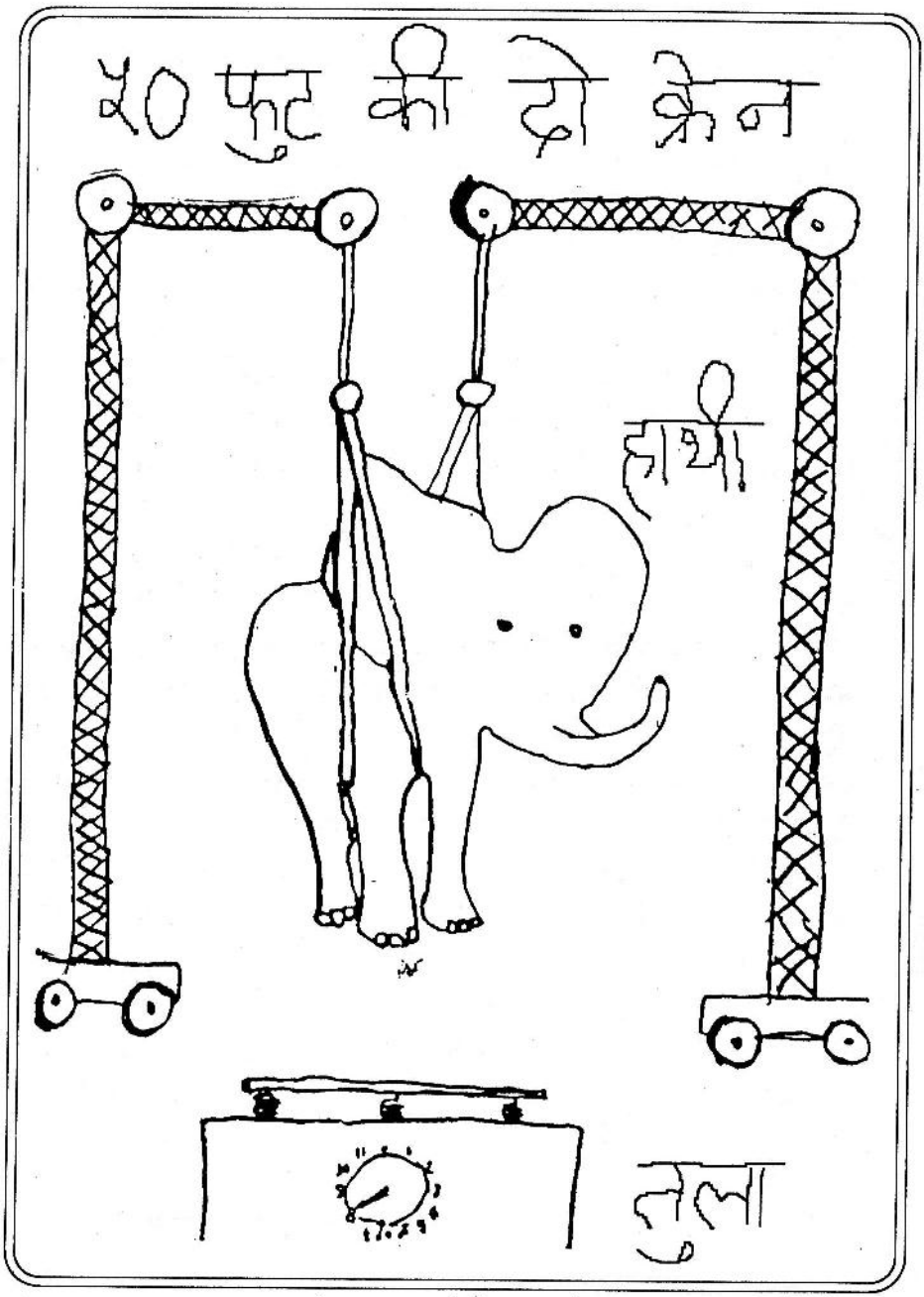

हाथी का वज़न कैसे पता करें?

इस सवाल का यह हल बताया एक सात साल के बच्चे ने.

संपर्क :एकलव्य, ई-1/208, अरेरा कालोनी भोपाल, मप्र., फोनः 563 380